International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 2; April 2017; Page No. 123-125

समकालीन हिन्दी लंबी कहानी में सांप्रदायिक संदर्भ

डॉ. संगीता गोगिया[1], डॉ. नन्दकिशोर मौर्य[2]

[1] प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्वद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

[2] प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, गौरीदेवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

सारांश
सांप्रदायिकता और इससे उत्पन्न अन्यान्य समस्याओं के विश्वव्यापी प्रभाव ने समकालीन कहानीकारों के मर्म पर भी गहरी चोट की है जिसका रचनात्मक प्रतिफलन है उनकी 'और अंत में प्रार्थना', 'सिपाही', 'मर गया दीपनाथ', 'कतरनी की मेहंदी', 'स्वीकारोक्ति', 'क्रॉस फायरिंग', 'बोधिवृक्ष', 'मुक्तियोद्धा' और 'मैं अब ठीक–ठाक हूं' जैसी 'हंस' में प्रकाशित अनगिनत लंबी कहानियां। इन कहानियों की खासियत यह है कि ये बिना हाहाकार मचाए एक गहरी व्यंजना में सांप्रदायिकता के खूनी चेहरे को उघाड़ देती हैं। ये लंबी कहानियां हमें एक बर्बर समय में ले जाती हैं, उस बर्बर समय में जिसकी बर्बरता की अनुगूंज हमें भारतीय समाज और राजनीति में हर पांचवें वर्ष या हर उस वक्त सुनायी देती है जब सांप्रदायिक राष्ट्रवाद के कारिंदे संस्कृति और धर्म की ठेकेदारी का वर्चस्व दिखाना चाहते हैं।
हंस में प्रकाशित लम्बी कहानियों में हमारे बदलते समय की सांप्रदायिक सोच को आकार मिलता है, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संकीर्ण साम्प्रदायिक सोच को उजागर करती हैं.

मूल शब्दः हंस, पत्रिका, सांप्रदायिकता, रचना, कहानी, साहित्य, समकालीनकहानी, संस्कृति, सजगता, धर्म सृजन, दृष्टिकोण, विमर्श

प्रस्तावना
सांप्रदायिकता और इससे उत्पन्न अन्यान्य समस्याओं के विश्वव्यापी प्रभाव ने समकालीन कहानीकारों के मर्म पर भी गहरी चोट की है जिसका रचनात्मक प्रतिफलन है उनकी 'और अंत में प्रार्थना', 'सिपाही', 'मर गया दीपनाथ', 'कतरनी की मेहंदी', 'स्वीकारोक्ति', 'क्रॉस फायरिंग', 'बोधिवृक्ष', 'मुक्तियोद्धा' और 'मैं अब ठीक–ठाक हूं' जैसी 'हंस' में प्रकाशित अनगिनत लंबी कहानियां। इन कहानियों की खासियत यह है कि ये बिना हाहाकार मचाए एक गहरी व्यंजना में सांप्रदायिकता के खूनी चेहरे को उघाड़ देती हैं। यथार्थ के नाम पर खूनी खेल के खबरिया वर्णन न करके इन कहानीकारों ने इस समय की विडंबना को 'सार्थक विडंबना' के रूप में पुनसर्जित किया है। ये लंबी कहानियां हमें एक बर्बर समय में ले जाती हैं, उस बर्बर समय में जिसकी बर्बरता की अनुगूंज हमें भारतीय समाज और राजनीति में हर पांचवें वर्ष या हर उस वक्त सुनायी देती है जब सांप्रदायिक राष्ट्रवाद के कारिंदे संस्कृति और धर्म की ठेकेदारी का वर्चस्व दिखाना चाहते हैं।
सांप्रदायिकता की हुंकार के अंधेरे में गुम हो गई हंसियों की करुण पुकार चंद्रकिशोर जायसवाल की 'मर गया दीपनाथ' कहानी में फिर सुनाई देती है। अयोध्या से ज्यादा खूंखार और मारक! पहले से कहीं ज्यादा खुला और वाचाल! अयोध्या में प्रतीक ढहाये गए थे, अब की प्रयोगशाला में नस्ल को मिटाने का उन्माद था। इन कहानियों में कहानीकारों ने भविष्य के अनिष्टि की आशंका व्यक्त की है। उस समय जिस तरह के हालात पैदा हो रहे थे या पैदा किए जा रहे थे, जिस तरह के 'प्रयोग' हिन्दू वैज्ञानिक कर रहे थे, उससे तो यही लगता है कि साहित्य, इतिहास, कला, संगीत सभी जगहों से मुस्लिम निशान मिटाए जाकर हिन्दुत्व की मोहर लगा दी जाएगी। हिन्दुत्व के तालिबान और तथाकथित पवित्र संस्कृति के रक्षक न जाने अब कौनसा ताण्डव रचेंगे?
उदय प्रकाश की 'और अंत में प्रार्थना' कहानी पर गंभीरता से विचार करते हुए समकालीन कथा आलोचक शंभु गुप्त ने कहा है– "संप्रदायवादी ध्रुवीकरण किसी भी नस्लवादी संगठन का प्रमुख एजेंडा होता है रा.स्व. संघ के एजेंड़ा भी यह कार्यक्रम रहा है और है और इसी के आधार पर उसका सांस्कृतिक राष्ट्रवाद टिका है। दरअसल यह एक तथ्य है कि समाज का सांप्रदायिक ध्रुवीकरण न तो पूरी तरह संभव है और न ही यह स्वाभाविक है। सामाजिक हित तो और इसमें कोई होता नहीं ही है। हां, एक जलजला ज़रूर इससे पैदा होता है; एक अमानवीय जुनून; जिसमें मनुष्य की तब तक की सारी उपलब्धियां, जीवन–मूल्य, आचार–संहिताएं इत्यादि सब स्वाहा हो जाती हैं। शेष बचता है, केवल एक तानाशाह और उसका नस्लवादी अंकार।" वस्तुतः 'हंस' में प्रकाशित लंबी कहानियां सांप्रदायिकता, क्रूरता, सत्ता, वर्चस्व, संगठन, ईमानदारी, मक्कारी, जिद, त्याग, धेर्य के अनगिनत अंधेरे उजले पक्षों को हमारी चेतना में रोपती है। 'और अंत में प्रार्थना', 'सिपाही', 'मर गया दीपनाथ', 'स्वीकारोक्ति', 'क्रॉस फायरिंग', जैसी लंबी कहानियों में सांप्रदायिकता के ऐसे ही तानाशाह और फासीवादी चरित्र का खुलासा हुआ है।
'क्रास फायरिंग' वेद राही की साम्प्रदायिक पृष्ठभूमि पर लिखी गई लंबी कहानी है जिसमें चार मुस्लिम युवकों की कट्टरता एवं जेहादी भावना स्पष्ट रूप से नजर आती है। 'सोमनाथ' गांव में रहने वाला हिन्दू है। अधिकतर परिवार मुसलमानों के हैं यद्यपि गांव के लोग मानवीय मूल्यों को समझने वाले तथा प्रेमभाव से रहने वाले थे लेकिन कुछ उत्पाती और पथभ्रष्ट युवकों की संकीर्ण सोच और जेहादी भावना से वे भी डरते थे। वे युवक आंतकवादी संगठन से जुड़े हुये थे। उन्होंने सोमनाथ को डराकर गांव से भगा दिया लेकिन उसकी अम्मा वहीं पर रह गई। वह अपनी मिट्टी से जुड़ी रहना चाहती थी। यही बात उन जेहादी युवकों को पसंद नहीं आयी। वे उस बुढ़िया को भी गांव से भगाना चाहते थे तथा उसके घर को अपना अड्डा बनाना चाहते थे। वे तरह–तरह से सोमनाथ और उसकी मां को आतंकित करते हैं। उनकी इन घटनाओं से त्रस्त होकर सोमनाथ मर जाता है। उन युवकों की हरकत का एक अन्य युवक यासीन विरोध करता है, उनको इस्लाम की दुहाई देते हुए तड़पते दिल से कहता है– "कहां लिखा है इस्लाम में कि अपने पडोस की एक बीमार लाचार बुढ़िया को मार दो, उसके खानदान के किसी आदमी ने कोई गैर इस्लामी बात नहीं की, वह मजदूर आदमी बेचारा सोमनाथ मर गया और उसकी बूढ़ी मां यह सदमा बरदास्त नहीं कर सकी, वह मर जाएगी तो खुदा हमें कभी माफ नहीं करेगा। उसकी मौत की जिम्मेदारी हम पर आएगी। हमारा ज़मीर हम पर लानत भेजेगा"

सोमनाथ की मौत का सदमा उसकी बूढ़ी मां बर्दाश्त नहीं कर पायी और बीमार हो गई। बेटे की मृत्यु के बाद उत्पाती युवकों ने बुढ़िया को गांव से भगाने के लिए बहुत हथकंडे अपनाए पर वह अपनी मिट्टी से जुदा नहीं होना चाहती थी इसलिए सब कुछ सहकर भी वहीं पर बनी रही और आखिरकार वह भी मर गई। बुढ़िया की मौत के कारण उनमें से एक युवक यासीन बहुत आहत हुआ और वह आतंक और जिहाद के रास्ते से हट गया। इस कहानी की एक खास बात यह कि गांव के मुसलमान इंसानियत का निर्वाह करते हुये हिन्दू रीति से बुढ़िया का अंतिम संस्कार करते हैं। लेकिन तभी जेहादी युवकों व आर्मी के जवानों के बीच फायरिंग प्रारम्भ हो जाती है।

सुबोध कुमार झा की लंबी कहानी 'कतरनी की मेहन्दी' वेद राही की 'क्रास फायरिंग' से विपरीत है। यहां रहने वाली बुढ़िया हिन्दू नहीं, मुस्लिम महिला कतरनी है जो घुमक्कड़ और बातूनी बुढ़िया है। वह अकेली हिन्दुओं के बीच रहती है। अपने सहिष्णु और सद्व्यवहार की वजह से वह हिन्दू महिलाओं में प्रिय है। कुछ कट्टर हिन्दुत्ववादी लोग उस पर यह दबाव डालते हैं कि वह यहां ना रहकर अपने बेटे–बहू के पास रहे। 'लच्छी बाबा' कट्टर ब्राह्मणवादी सोच के पण्डित–पुजारी हैं जो धर्म और पाप–पुण्य की दुहाई देकर हिन्दू लठैतों को कतरनी को मारने के लिए भड़काते हैं– "ऐसे जमीन क्या डंगा रहे हो। घर की छत पर डंडा पटको कतरनी को भी तो लगे कि हिन्दुओं की रगों में खून अभी शेष है। हमारा मामला इस तरह से कभी समाप्त नहीं होगा। इस मियांईन का दिमाग इन दिनों सातवें आसमान में विचरता है। इसका पंख काटना होगा समाजी, धर्म की जय बोलो और पापी का नाश करो।"ङ पर गांव में 'सुमरिन वर्मा' जैसे लोग भी हैं जो कतरनी का पक्ष लेकर मानवीयता के जिन्दा होने के सबूत भी देते हैं। गांव की हिन्दू महिलाएं कतरनी का साथ देती हैं तथा लच्छी बाबा का विरोध करते हुए कहती हैं– "लच्छी बाबा पुरुष जिद का प्रतीक है। जो नारी की बर्बादी व आँसुओं के पक्ष में ही जा सकती है लेकिन हम कतरनी को अकेला नहीं छोडेंगे।"[4]

स्त्री: अस्मिता का नया आयाम स्त्री स्त्री ही होती है वह हिन्दू या मुसलमान नहीं होती। उसकी पीड़ा एक–सी होती है। पुरुषों और धर्म–ग्रन्थों से प्रताड़ित मुस्लिम बुढ़िया कतरनी के समर्थन में हिन्दू–स्त्रियों का आना इसका प्रमाण है। वहीं 'लच्छी बाबा' जैसे ब्राह्मण सांप्रदायिकता के पक्षधर है तो 'सुमिरन वर्मा' जैसे दलित पात्र सांप्रदायिकता के विरोधी। कहानी एक साथ तीन विमर्शों को सामने लाती है।

सैनिक के अन्तर्द्वन्द्व पर आधारित चन्द्रकिशोर जायसवाल की सिपाही नामक लंबी कहानी द्वन्द्वात्मक मनोविज्ञान पर आधारित है। युद्ध करने के लिए अभिशप्त एक सैनिक की युद्ध विरोधी मानसिकता का गहन विश्लेषण यहां प्रस्तुत है। वह सोचता है कि युद्ध सत्ता और रक्षा विभाग द्वारा थोंपा जाता है जिसे मानना सिपाही का कर्त्तव्य एवं नियति दोनों बन जाते हैं। कारगिल पृष्ठभूमि में कर्नल आहूजा, कैप्टन चोपड़ा और कैप्टन भारद्वाज गोलाबारी थम जाने के बाद एक जगह बैठे हुए थे तभी देखते हैं कि तीन सैनिक मृत पाकिस्तानी सैनिकों के शव को घसीट कर ला रहे हैं। इस मंजर को देख कैप्टन चोपड़ा का अन्तस चीत्कार उठता है। वह इस बात का समर्थन नहीं करता है कि सैनिकों को इस तरह घसीटा जाए।

वस्तुत: चोपड़ा युद्ध में भी मानवीय मूल्यों को नहीं भूलता है। वह सैनिक की मजबूरी को समझ रहा है क्योंकि सैनिक को आदेशों की पालना करनी पड़ती है। चोपड़ा का मानना है कि सैनिक कभी भी युद्ध नहीं चाहता, वह तो विवश होकर अपने प्राणों की बाजी लगाता है। सैनिक चाहे कोई भी हो, किसी भी देश का हो, उसका कोई धर्म नहीं, कोई मजहब नहीं, उसका लक्ष्य तो सिर्फ दूसरे सैनिकों को मारकर थोंपे हुए युद्ध को जीतना है, उसे तो मौत के मुंह में चले जाना है, जहां से वापसी का कोई पता नहीं होता। गुप्तचर विभाग की नाकामी का खमियाजा भी सैनिक को मौत के रूप में भुगतना पड़ता है।

कैप्टन चोपड़ा साम्प्रदायिक विद्वेष, ओजस्वी नारों तथा कट्टर हिन्दुत्ववादियों के प्रति भी आक्रोश व्यक्त करता है क्योंकि बाबरी मस्जिद तथा हिन्दू–मुस्लिम दंगे वाले प्रकरण के पश्चात् हिन्दू साम्प्रदायिक नेताओं द्वारा दिये गये बयानों से यहां के मुसलमानों के मन में आतंकवादी संगठनों के प्रति सहानुभूति पैदा हुयी। यहां तक कि लश्करे–तोयबा के एक नेता ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि हिन्दुत्ववादी नेताओं के नारों ने उनकी जड़ों को मजबूत किया है– "बाबरी मस्जिद और उसके पूर्व के हुए दंगों ने इस देश में हिन्दू–मुस्लिम एकता की नींव हिला दी। हिन्दू सांप्रदायिक नेताओं के बयानों ने यहां के ढेर सारे मुसलमानों के दिल में इन आतंकी संगठनों के प्रति सहानुभूति पैदा कर दी है। लश्कर–ए–तोयबा के नेता बहुत खुश होकर बताते हैं कि हिन्दू सांप्रदायिक नेता का हर बयान उनकी जड़ों को मजबूत करता है, हर बयान कुछ और मुसलमानों को उनसे जोड़ देता है।"[5]

कहानी स्पष्ट करती है कि सांप्रदायिक और नस्लवादी सत्ताओं के निर्णयों पर थोपे गए युद्ध का एक सैनिक के जीवन पर कितना गहरा मनोवैज्ञानिक असर होता है। उसकी मनुष्यता, उसकी संवेदनशीलता, उसकी वेदना सब मिलकर भी युद्ध को रोक पाने में असमर्थ होती है। बस एक मोहरे की तरह अपने अहसासों को मार कर मौत का सामना करते हुए खुद को बचाने के लिए दूसरे को मारने का अभिशाप लिए उसे अपनी परायी अनगिनत लाशों पर से आगे बढ़ना है। उसका यह आगे बढ़ना यानि जीतने का प्रयास करना यह प्रश्न छोड़ता है कि क्या युद्ध अनिवार्य है? क्या मानव की यही नियति है कि वह इसी प्रकार आपस में लड़ते हुये मर जाये?

चन्द्रकिशोर जायसवाल की ही लंबी कहानी 'मर गया दीपनाथ' सांप्रदायिकता के मनोविज्ञान को व्यक्त करती है। वस्तुतः 6 दिसम्बर के अयोध्या कांड के बाद जो सांप्रदायिक दंगे पूरे देश में भड़के उनकी मार्मिक और कथात्मक अभिव्यक्ति है यह कहानी। दीपनाथ ऐसे ही सांप्रदायिक दंगे में फंस जाता है। मुसलमानों के एक उग्र समूह द्वारा जब उसे घेर लिया जाता है और उसको मारने की विधि पर चर्चा की जाती है तो वह सिहर उठता है। पल–पल मौत के भय से भयाक्रांत दीपनाथ तरह–तरह के विचार करता है। उसकी मनोदशा से कहानीकार यह दिखाने का प्रयास करता है कि धर्म से बड़ा जीवन है। जिंदा रहने के लिए लगभग पागलपन की हद तक बौखलाया दीपनाथ हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म के बारे में सोचता है, वह पाप– पुण्य के बारे में सोचता है और बरबस खुदा से पूछने लगता है– "इसी भारतवर्ष में क्या गायों की बलि नहीं दी जाती थी वैदिक काल में? ब्राह्मण गाय नहीं खाते थे क्या? मैं जिंदा रहना चाहता हूं। ऐ खुदा, और सुख–शांति से अपनी जिंदगी गुजारना चाहता हूं। फिर मैं हिन्दू होकर रहूं या मुसलमान, कोई फर्क नहीं पड़ता है मेरे लिए आज से दस हजार साल पहले किसके पूर्वज हिन्दू ये किसके पूर्वज मुसलमान? और आज से दस हजार साल बाद किसे पता कि हमारी संतानों में कौन क्या बना रहेगा, कौन कितना बदल जाएगा ? अभी भी क्या तुम केवल मुसलमानों के खुदा हो ?"[6]

जब दीपनाथ कट्टर मुसलमानों के एक हिंसक समूह से घिर जाता हैं और अपने जीवन को बख्श देने के लिए गिड़गिड़ाता है तो यही लगता है कि जिंदगी किसी भी धर्म से बड़ी है– " रशीद भाई, मैं जिन्दा रहना चाहता हूँ अपने बच्चों के लिए, अपने मासूम बच्चों के लिए। मेरे अंदर का हिन्दू मर गया। मैं मुसलमान बन जाऊंगा। मुझे जीवनदान दे दो; खुदा के वास्ते बचा लो मुझे।"[7]

दीपनाथ बच तो जाता है पर 'अल्लाहो अकबर और हर–हर महादेव' के महाशोर में किया गया गया कत्लेआम उसको भीतर तक तोड़ देता है। उसकी चेतना पर लगा कत्लेआम का यह आघात उसे जीते–जी मार देता है। दंगों के इस मरघटी उच्छवास में ऐसा भी हो रहा था कि कुछ हिन्दू मुसलमानों को बचा रहे थे, कुछ मुसलमान हिन्दुओं की जान की हिफाजत कर रहे थे। पर हर कोई ऐसा खुशनसीब नहीं था कि उसे ऐसे लोग मिल जाएं। दीपनाथ ऐसा ही एक खुशनसीब था जिसे शेख साहब जैसे इन्सान मिले। इस सब के बावजूद दंगों की विभीषिका से आक्रांत दीपनाथ शेख साहब के चौकीदार से कहता है– "वह दीपनाथ जिंदा नहीं है, वह मर गया। उसकी लाश शेख साहब के कमरे में ही कहीं पड़ी होगी। तुम उस पीर से कहना कि वह उस लाश को दफन कर दे..... जला दे....."[8]

आज के लेखकों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है साम्प्रदायिकता! उदयप्रकाश की '..... और अन्त में प्रार्थना' की केन्द्रीय कथा साम्प्रदायिकता ही है। लेखक यहां केन्द्रीय कथा के साथ समसामायिक राजनीति, सामाजिक और अन्य समस्याओं को इस प्रकार से सामने रखता है कि वे भी कथा के अंग लगती हैं। सही भी है आज जितनी भी साम्प्रदायिक समस्याएं खड़ी हुई हैं उनके मूल में वोट की राजनीति करने वाले नेताओं और कट्टर धर्माधिकारियों की खूंखार अभिलाषाएं और सत्ता लोलुपता ही है।

'....और अंत में प्रार्थना' कहानी पेशे से डॉक्टर दिनेश मनोहर वाकणकर की घुटन और अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करती है। डॉक्टर दिनेश मनोहर वाकणकर एक डॉक्टर है जो बेहद धार्मिक किस्म का प्रतिभाशाली विद्वान और समर्पित पुरुष है। अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए उन्होंने आर.एस.एस. में सक्रियता बढ़ा ली और संघ के प्रतिष्ठित और निष्ठावान.... "रचना, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और उसकी अनुपोषक विचारधारा की राजनैतिक व्यवस्था, जो अंततः सरकार भी बनती है, के बीच एक सचमुच के ईमानदार व्यक्ति की अंतर्कथा कहती है, कि वह ईमानदार, संघ का सक्रिय कार्यकर्ता तथा डॉक्टर, अपनी प्रतिबद्धता के कारण सच की रक्षा का दायित्व निभाता हुआ पल–पल दम तोड़ता है और अंत में अर्धमृत्यु को प्राप्त होता है। इसी क्रम में रचना, संघ के हिंदुत्व, हिंदू राष्ट्र तथा उनके वैदिक संस्कारों के पीछे छिपी अमानवीय दृष्टि तथा सत्ता लोलुपता को भी उजागर करती है .... कुल जमा रचना, संघ तथा उसकी राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं के छद्म को उजागर करती है और उसका यथार्थ पक्ष पर्त दर पर्त कुशलता से खोलती है।"[9]

अपनी अवसरवादिता, असहिष्णुता और कट्टरता के कारण संघ वाकणकर की ईमानदारी को बर्दास्त नहीं कर पाता और उसे संघ से हटाने के लिए उस पर नक्सलवाद को बढ़ावा देने का आरोप लगाया जाता है। इन तमाम घटनाओं के बीच वह अफसरशाही व प्रशासन के द्वारा परेशान होता रहा है और इन सब के बीच पिसता हुआ अर्द्ध मृत्यु प्राप्त करता है।

संदर्भ सूचि

1. शंभु गुप्तः कहानीः समकालीन चुनौतियां; पृष्ठ–774.
2. वेद राही क्रास फायरिंग, हंस–अक्टू 2001 पृष्ठ– 83,
3. सुबोध कुमार झाः कतरनी की मेहन्दी, हंस– मई 1995; पृष्ठ– 83.
4. सुबोध कुमार झाः कहानी कतरनी की मेहन्दी, हंस–मई 1995; पृष्ठ 72.
5. चन्द्रकिशोर जायसवाल, सिपाही, हंस– जुलाई 2000; पृष्ठ 75.
6. चन्द्रकिशोर जायसवालः मर गया दीपनाथ, हंस– दिसंबर 1992, पृष्ठ–60.
7. चन्द्रकिशोर जायसवालः मर गया दीपनाथ, हंस– दिसंबर 1992; पृष्ठ–66.
8. चन्द्रकिशोर जायसवालः मर गया दीपनाथ, हंस– जनवरी 1993, पृष्ठ–69,
9. हंस– अपना मोर्चा– अशोक गुप्ता, नवम्बर 1992; पृष्ठ– 8.